# उच्च शिक्षा–वर्तमान परिप्रेक्ष्य

डॉ. एम.एस. अगवानी

भारत में उच्च शिक्षा की अवस्था पर आजकल बहुत कुछ कहा जाता है। दुर्भाग्यवश जितना भी इस संदर्भ में कहा जाता है वह अत्यंत चिंतनीय है। समय-समय पर इस विषय में संचार-माध्यमों ने उच्च शिक्षा की दयनीय स्थिति एवं उच्च शिक्षण व अधिगम के कई संस्थानों की दुरावस्था पर कई प्रतिवेदन प्रकाशित किये हैं तथा कई साक्षात्कार व टिप्पणियां प्रसारित की हैं। अब यह स्थिति बन गई है कि उच्च शिक्षा के भविष्य को लेकर सभी का सोच सर्वमान्य हो व इस पर सकारात्मक समालोचना के जरिये मंथन की प्रक्रिया को गति मिले।

यह अत्यंत आवश्यक है कि सभी तथ्यों पर विचार कर लिया जाए। जहां तक विश्वास किया जाए उच्च शिक्षा की वर्तमान स्थिति के लिए मानव मात्र ही उत्तरदायी है। इस दुरावस्था पर दृढ़ इच्छा शक्ति से ही नियंत्रण पाया जा सकता है एवं स्वस्थ, समृद्ध एवं सकारात्मक स्थिति फिर से बहाल की जा सकती है।

स्वस्थ नजरिये से यही कहा जा सकता है कि उच्च

शिक्षा की स्थिति के पक्ष एवं विपक्ष में कई ठोस कारण हैं किंतु विपक्ष में अवस्थित कारण अधिक सुदृढ़ हैं। नकारात्मक पक्ष में ठोस, सर्वमान्य व न्यायोचित मुद्दा यह है कि हमारी उच्च शिक्षा मध्यमवर्गीय गुणवत्ता से युक्त है। इस उच्च शिक्षा व्यवस्था से जो स्नातक बनकर आते हैं उन्हें नौकरी नहीं दी जा सकती तथा इस व्यवस्था में उन लड़के-लड़कियों को प्रवेश दे दिया जाता है जिन्हें पढ़ाया नहीं जा सकता एवं इसमें इन विद्यार्थियों की कोई गलती नहीं होती। ऐसे विद्यार्थियों को विद्यालीय शिक्षा में छात्रों की कमी को ध्यान में रखते हुए असावधानीवश किंतु अवश्य रूपेण प्रवेश दे दिया जाता है।

सकारात्मक दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो यह वही शिक्षा प्रणाली है जिसमें समाज व देश को कुछ उत्कृष्ट एवं निष्णात् वैज्ञानिक, तकनोविज्ञ, न्यायविद्, प्रशासक एवं प्रबंधक दिये हैं। वस्तुतः हमारी शिक्षा व्यवस्था से निकले ये निष्णात एवं ज्ञान समृद्ध व्यक्तित्व विश्व में और कहीं से शिक्षा प्राप्त व्यक्तित्व की तुलना में सर्वश्रेष्ठ ही सिद्ध होते हैं किंतु औसतन शिक्षा प्राप्त व्यक्ति वांछित स्तर के नहीं होते हैं। वस्तुतः किसी भी राष्ट्र के जीवन के समस्त क्षेत्रों में किसी भी उत्पाद की गुणवत्ता उसे सकारात्मक अथवा नकारात्मक रूप में प्रभावित करती है चाहे वह शिक्षा क्षेत्र ही क्यों न हो।

विगत कई वर्ष से हमारे महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में हमारे औसतन उत्पाद की गुणवत्ता में गिरावट क्यों आई है? इसके कई कारण हैं किंतु अन्य की अपेक्षा तीन कारण मूलभूत हैं। प्रथमतः हम कभी भी दृढ़ निश्चय लेकर सुदृढ़ यह प्रयास नहीं कर पाये कि कोलोनियल शासन की विरासत के चंगुल से छूटकर इससे मुक्ति पा लें। भारत में अंग्रेजों ने विशिष्ट प्रकार की उच्च शिक्षा को लागू इसलिए किया कि मूलतः कोलोनियल प्रशासन के निचले स्तर पर ये कर्मचारी नियुक्त किये जा सकें। साम्राज्य का सामान्य प्रशासन, निर्णय लेने की प्रक्रिया तथा आम प्रबंध अंग्रेजी शासन के हाथों में था। भारतीय स्नातकों को स्वशासी प्रणाली को संचालित करने के लिए कोई भी प्रशिक्षण नहीं दिया गया था।

द्वितीयतः सातवें तथा आठवें दशक में देश के महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में छात्रों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। जबकि वर्ष 1947 के दौरान विश्वविद्यालयों में 2.3 लाख विद्यार्थियों का नामांकन हुआ। यह संख्या 1992-93 में बढ़कर बीस गुना यानी 46 लाख हो गई। इसी प्रकार महाविद्यालयों की संख्या 1947 के 491 की तुलना में दस गुना वृद्धि होकर 5000 हो गई। आज देश में लगभग 200 विश्वविद्यालय हैं जबकि स्वाधीनता प्राप्त करने के समय 1947 में यह संख्या 19 ही थी। सातवें तथा आठवें दशक में विश्वविद्यालयों के नामांकन में 13 से 14 प्रतिशत वृद्धि हुई जो दुनिया में एक अप्रत्याशित स्थिति है। तब से अब यह संख्या घटकर लगभग 4 प्रतिशत रह गई है।

आरंभिक दशाब्दियों में देश में उच्च शिक्षा प्राप्त करने की होड़ में जो वृद्धि हुई वह नितांत स्वाभाविक थी क्योंकि देश में विद्यालयी शिक्षा का तेजी से प्रसार हुआ तथा अधिकाधिक लोग उच्च शिक्षा को रोजगार एवं भौतिक विकास व उपलब्धियों का एकमात्र साधन मानने लगे। किंतु इससे भी एक गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई क्योंकि विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा में बढ़ता नामांकन अध्ययन संस्थानों के भवन, पुस्तकालय,

प्रयोगशाला तथा छात्रावासों के संदर्भ में समनुरूप एवं अनुकूल नहीं था। छात्रों के लिए संसाधनों की भारी कमी थी। शिक्षा की गुणवत्ता में भारी गिरावट का यह एक महत्वपूर्ण कारण था जिससे शिक्षा परिसरों में तेजी से अशांति का माहौल बनता गया।

तृतीयतः उच्च शिक्षा को एक और धक्का इस बात का लगा जब सत्ता ने विश्वविद्यालयी प्रणाली में विज्ञान एवं तकनोलोजी पर अत्यधिक बल देना आरंभ किया। सरकार ने देश भर में विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के तहत प्रयोगशालाओं का जाल सा बिछा दिया जिन्हें अधिक साधन सुविधाएं उपलब्ध कराई जाने लगी जबकि इनकी तुलना में विश्वविद्यालयों को नगण्य अनुदान दिया जाता रहा। इसी क्रम में तदुपरांत भारतीय तकनोलोजी संस्थान तथा प्रबंधन संस्थान भी स्थापित कर दिये गये जो विश्वविद्यालयी प्रणाली की सीमाओं के बाहर थे। इस बदले हुए माहौल में भारत में विश्वविद्यालयों के संदर्भ में यह अत्यंत आशंकाजनक बात हो गई है कि क्या शिक्षा के ये मंदिर दैनन्दिन जीवन में आवश्यक कौशल छात्रों में विकसित कर सकेंगे? अथवा विश्वविद्यालयों की इस दिशा में कोई उल्लेखनीय भूमिका कभी प्रतिपादित हो पाएगी। यह कहना तर्कसंगत होगा कि भारत में उच्च शिक्षा की खामियों के प्रति जागरूकता में कमी से हमारी कठिनाइयां उत्पन्न नहीं होती अपितु इस शिक्षा प्रणाली की बुराइयों व खामियों का निराकरण करने के लिए अपेक्षित 'राष्ट्रीय इच्छा' की कमी से ये खामियां उत्पन्न होती हैं। उदाहरणतः वर्ष 1966 में निर्णीत कोठारी शिक्षा आयोग की रिपोर्ट इस संदर्भ में एक महत्वूपर्ण, प्राधिकृत एवं विस्तृत दस्तावेज है जिसमें देश में सभी स्तरों पर शिक्षा के लक्ष्यों की विस्तृत व्याख्यता की गई है तथा इनकी प्राप्ति के लिए व्यवहारिक उपाय निर्देशित करती है। कोठारी कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार विश्वविद्यालयों का उद्देश्य–

– ज्ञान की खोज, अन्वेषण एवं इसे व्यवहार में लाना,

– जीवन के हर क्षेत्र में उचित एवं उपयुक्त नेतृत्व उपलब्ध कराना,

– कृषि, औषधि, विज्ञान, तकनोलोजी, विधि, शिक्षा एवं प्रशासन के क्षेत्र में समाज को सक्षम पुरुष एवं महिलाएं उपलब्ध कराना,

– समानता एवं सामाजिक न्याय के लिए अथक प्रयास करना तथा इनका प्रोन्नयन करना, तथा

– समुन्नत जीवन के समनुरूप अभिवृत्तियों एवं मूल्यों का निरूपण।

यहां यह चर्चा करना तर्क संगत होगा कि कोठारी शिक्षा आयोग की सिफारिशों को भारत सरकार ने स्वीकार कर लिया किंतु सिवाय विद्यालयों में दस जमा दो पद्धति तथा कृषि जैसे क्षेत्रों में इन सिफारिशों के कार्यान्वयन के और कुछ नहीं किया और इन क्षेत्रों में इसके परिणाम भी पुख्ता रहे। कृषि जैसे क्षेत्र में हरित क्रांति तथा अन्न उपजाने में आत्मनिर्भरता को ठोस आधार मिला। विद्यालयी शिक्षा में सुधार और अधिक उत्पादक रहते यदि मात्र व्यवसायीकरण का पूर्ण निष्ठापूर्वक कार्यान्वयन किया जाता।

कोठारी शिक्षा आयोग की कुछ सिफारिशों के कार्यान्वयन की पहल शैक्षिक समुदाय द्वारा विश्वविद्यालयों में उपलब्ध तत्कालीन संसाधनों के तहत ही की जा सकती थी किंतु यह हो नहीं पाया। और यही बात इन समस्याओं के मूल में है कि अध्यापन

समुदाय अपनी नेतृत्व करने की भूमिका को नजर अंदाज कर गया।

जहां तक हम जान पाये हैं उच्च शिक्षा के दो प्रमुख कार्य हैं। प्रथमतः ज्ञान का व्यापक प्रचार-प्रसार तथा द्वितीयतः ज्ञान का सृजन व समुन्नयन। इन दोनों ही पक्षों में निरंतर हो रहा चौतरफा ह्रास अत्यंत दुखद है। पुस्तकों के अभाव में बदहाल पुस्तकालयों, उपकरणों की कमी के कारण जर्जर प्रयोगशालाओं के कारण अध्यापकों के लिये संबंधित निकायों तथा विषयों के क्षेत्रों में हो रही प्रगति एवं विकास की जानकारी जुटा पाना अत्यंत कठिन हो गया है एवं वे स्वयं ही अपनी सीमित जानकारी के विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करते हैं जो कहीं भी साम्य नहीं रख पाती। और जहां तक नये ज्ञान के सृजन का प्रश्न है यह कोई अतिश्योक्ति नहीं कि भारतीय विश्वविद्यालयों में यह एक अलभ्य संप्रत्यय हो गया है। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि विश्वस्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में भारतीय विश्वविद्यालयों के शिक्षकों द्वारा प्रकाशित लेखों-रचनाओं व अनुसंधान-पत्रों की संख्या विश्व के किसी एक अग्रणी विश्वविद्यालय के शिक्षकों या वैज्ञानिकों की तुलना में नगण्य होती है।

वर्तमान स्थिति अत्यंत गंभीर है। किंतु सर्वाधिक चिंता की बात इस दुरावस्था के प्रति अध्यापन समुदाय की अन्मयस्कता एवं दुराव है जो विचलित कर देने वाला है जबकि अपने व्यवसाय की अस्मिता को खतरा अध्यापन समाज व्यवसायिक दर्शन को कुप्रभावित करता है व व्यवसाय धर्म को आहत कर देता है।

अंततः कुछ विचार विश्वविद्यालयों को स्वायत्तता देने के प्रश्न पर। एक अध्यापक के रूप में मेरी नजर में स्वायत्तता—आप क्या पढ़ाते हैं, आप कैसे पढ़ाते हैं तथा आप किस प्रकार से अपनी अनुसंधान की समस्याओं का पता लगाते हैं तथा उनकी खोज कर विश्लेषण करते हैं, में होनी चाहिए। सौभाग्यवश भारत में कोई भी ऐसा विश्वविद्यालय अधिनियम नहीं जो विश्वविद्यालयों को यह आजादी नहीं दे। साथ ही इस बात के भी कोई पुख्ता सबूत नहीं मिलते जिसमें हमारे विश्वविद्यालयों द्वारा इस आजादी का भरपूर उपयोग किया गया हो।

अब हम पाठ्यक्रमों की बात को ही लें। कितनी बार इनकी पुनरीक्षा की जाती है? कब व कितना संशोधन इनमें किया जाता है तथा इन्हें अधुनातन बनाया जाता है? अनुसंधान की स्थिति, अवस्था एवं स्तर पर क्या बात की जाए। भारतीय विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों व संकायों द्वारा हाथ में लिये जाने वाले अनुसंधान परियोजनाएं वित्तीय सहायता सुलभ कराने वाले कई अभिकरणों के सामने अपना सुदृढ़ पक्ष नहीं रख पाती हैं अथवा इन परियोजनाओं का स्तर सक्षमता से परिपूर्ण नहीं होता। वैसे कुछ व्यक्तिगत शोधार्थियों एवं विभागों द्वारा उत्कृष्ट अनुसंधान भी किये जाते हैं एवं किये जा रहे हैं किंतु विशेषतः अनुसंधान के बेनर तले निष्पादित अनुसंधान कदापि स्तरीय नहीं कहे जा सकते एवं इन्हें मध्यम स्तर का माना जा सकता है यदि इन्हें बेकार नहीं समझा जाए।

विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों के अध्यापक आज अधिक संगठित हैं जबकि तीस वर्ष पूर्व ऐसी स्थिति नहीं थी। यह भी उपयुक्त है कि इनकी यूनियनें अपने इन सदस्यों के लिए बेहतर तथा उत्तम कार्य वातावरण के लिये अथक प्रयास करती रहती हैं किंतु ये कब तक एवं किस सीमा तक अपने व्यवसायिक स्तर पर

कितना ध्यान दे पाती हैं यह सर्वविदित है। यदि अध्यापन वर्ग तथा इनकी यूनियनें अध्यापकों के परिश्रम को इन दोनों नजरियों से समानुपातिक रूप से देखें तो सभी विश्वविद्यालय उत्कृष्ट अधिगम केंद्रों के रूप में पुनः प्रतिष्ठापित हो सकेंगे।

यह बात भी याद रखी जानी चाहिए कि स्वायत्तता किसी निर्वात की स्थिति में नहीं पनप सकती है। यदि विश्वविद्यालय को किसी वित्त-पोषक संस्था के पास जाना पड़े अथवा किसी भी आर्थिक निकाय के समक्ष एक-एक पैसे के लिए हाथ पसारने पड़ें तो वह स्वायत्तशासी कैसे रह पाएगी? यह निर्विवाद सत्य है कि सभी आधुनिक देश उच्च शिक्षा को वित्तीय सहयोग प्रदान करते हैं एवं भारत के संदर्भ में भी यह अपवाद नहीं है। वास्तविक परिप्रेक्ष्य में यदि विचार किया जाए तो विश्वविद्यालयों को पर्याप्त रूपेण अपने संसाधन जुटा लेने चाहिए यदि ये स्वायत्तशासी बनना चाहते हैं।

यह दो प्रकार से अर्जित की जा सकती है। प्रथमतः अपने देश एवं समाज की अर्थव्यवस्था, इसके उद्योग, इसके कृषि क्षेत्र, एवं राष्ट्र के आम जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप विषय, पाठ्यक्रम एवं कार्यक्रमों को लागू करके। इसमें समसामयिक पुनरावलोकन एवं पुनरीक्षा, पाठ्यक्रमों में नई बात संलग्न करने अथवा अनावश्यक जानकारी हटाने की आवश्यकता होगी। इसके लिए अनुदेशक मण्डल, अध्यापकों एवं अध्यापन निकायों को पुनः प्रशिक्षण भी प्रदान करना पड़ेगा। द्वितीयतः विश्वविद्यालयों को उन सभी पर पूर्ण ध्यान देना होगा जो किसी भी पाठ्यक्रम अथवा कार्यक्रम के लिये पूरा शिक्षण शुल्क देने की क्षमता रखते हों तथा देते हों और सरकार को भी शिक्षा प्राप्त करने के लिये उन लोगों को छात्रवृत्तियां अथवा ऋण प्रदान करने होंगे जो ऐसा कर पाने में असमर्थ हैं।

अंततः उच्च शिक्षा में संकटपूर्ण स्थिति समाज तथा अध्यापन समुदाय द्वारा अपने उत्तरदायित्व के प्रति तिरस्कार एवं अनासक्ति, व उदासीनता बरतने का परिणाम है। यदि दृढ़ इच्छा शक्ति सृजनशील दृष्टिकोण, सकारात्मक कार्यान्वयन के प्रति रूझान तथा उत्तरदायित्व के निर्वाह का दृढ़ संकल्प मन में लिये नवीन उत्साह से कार्य किया जाये तो यह सब कुछ पुनः प्रतिष्ठापित किया जा सकता है।

**अनुवाद** : डॉ. एम.एल. नागदा
प्रबंधक (जन संपर्क) हिंदुस्तान जिंक लिमिटेड,
यशद भवन-उदयपुर-313004